ओ३म् तत्सत्

वसन्तोपहार

२.५/६८
१६२२
१५.५.१९६९

यज्ञमें पशुवध वेदविरुद्ध

दृते दृंह मा मित्रस्य चक्षुषा
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥—यजुर्वेद

संपादक तथा प्रकाशक
श्रीनरदेवशास्त्री, वेदतीर्थ ।

सहायक
श्रीचन्द्रमणि विद्यालंकार पालीरत्न ।

हिन्दी-संस्करण १०००
होलिका पूर्णिमा संवत् १९९२
मूल्य—पशुबलिदाननिरोध पशुबलिदानविरोध

ॐ तत्सत्

अवतरणिका

कलकत्ता के कालिका मन्दिर में प्रतिदिन अनेक पशु बलिदान के रूप में मौत के घाट उतारे जाते हैं। पशुवध की कुप्रथा के निवारण के लिए जयपुर निवासी रामचन्द्रशर्मा ने उपवास स्वरूप में सत्याग्रह किया। उसके कारण संपूर्ण बंगाल व अन्य प्रान्तों में भीषण आन्दोलन खड़ा होगया और सर्वत्र हलचल मच गयी। तब महामना पं० मदनमोहन मालवीय कलकत्ता पहुँचे और उस सत्याग्रह को, समझा बुझा कर, रोका तथा स्वयं पशुबलि के विरोध में बड़े जोरों के साथ प्रचार प्रारम्भ किया। पशुबलि के खण्डन रूप में 'बलिदान' नामक एक पुस्तक रचकर उस में एतत्संबन्धी अपने विचार विस्तारपूर्वक भलीप्रकार प्रदर्शित किए। उन्हों ने भारतीय विद्वानों से पशुबलि के संबन्ध में सम्मति मांगी, जिसे पढ़कर मेरे दिल में तरंग उठी कि मैं भी बलिदान के संबन्ध में अपनी शुभ सम्मति विद्वानों के समक्ष समुपस्थित करूं।

इस कारण से मैंने परिश्रम-साध्य इस प्रबन्ध की रचना की है। आशा है उदार प्रेमी विद्वान् लोग इसे पढ़कर संतुष्ट होंगे।

"गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति सज्जनाः॥"

इस नीतिवचन के अनुसार इस प्रबन्ध-बन्धन में यदि कहीं कोई त्रुटि रह गयी हो तो उसके लिए मेरी कृताञ्जलि है।

देवाश्रम
महाविद्यालय
ज्वालापुर

नरदेवशास्त्री,
वेदतीर्थ

रायसाहेब श्री पं० रामचन्द्रशर्मा इञ्जिनीअर
पी० डब्ल्यू० डी० लखनऊ
तथा
श्रीमहाशय डूँगरमल जी आर्य, पहासू, जिला
बुलन्दशहर की सहायता से मुद्रित।

ॐ तत्सत्

यज्ञमें पशुवध वेदविरुद्ध ।

ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति, ये च भूतेषु जाग्रति ।
पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति, ते न आत्मसु जाग्रति,
ते नः पशुषु जाग्रति ॥ अथर्व० १९, ४८, ५

इस मंत्र में 'पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति' इस वचन से ईश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्यों को चाहिए कि वे सभी पशुओं की रक्षा करें।

यज्ञ का स्वरूप।

'द्रव्यं देवता त्यागः' का० श्रौ० सू० २३

अर्थः—धान्य-जौ आदि द्रव्य हैं। वेदमंत्र से जिस विषय का प्रतिपादन किया गया हो, वह देवता कहलाता है। अग्नि में आहुतियों का देना त्याग है। अतः, अग्नि आदि व्यावहारिक देवों के निमित्त परिशुद्ध धान्य-जौ आदि द्रव्यों व घी आदि पदार्थों की वेदमंत्रोच्चारण पूर्वक अग्नि में आहुतियें देना यज्ञ कहलाता है।

वह हवि खारा-खट्टा-तीखा आदि गुणरहित और सुगन्धि पुष्टि-वृष्टि-रोगनाश आदि गुणसहित चार प्रकार की ही है, जिसमें निम्न वेदमंत्र का प्रमाण है—

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्, देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि । वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः, स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥ यजु० २९, ३५ अथर्व० ५, १२, १०

पाथः, हवींषि, मधुना, घृतेन—ये चारों पद चारों प्रकार के द्रव्यों का ही हवन करना उपदिष्ट करते हैं, अतः यज्ञ में उन्हीं का ग्रहण करना योग्य है, प्राणिवध-जन्य मांस का नहीं।

वैशेषिक दर्शन के प्रशस्तपादभाष्य में लिखा है—"मांसन्त्वशुचिद्रव्यं दुष्टञ्चेति यथा च श्वमांसादीनां स्वत एवाऽशुचित्वमिति" अर्थात्, मांस अपवित्र द्रव्य है और दुष्ट है, जैसे कि कुत्ते का मांस आदि स्वतः एव अपवित्र है। दुष्ट मांस के संबन्ध में कात्यायन श्रौतसूत्र में लिखा है—

दुष्टस्य हविषोऽप्सुव्रहरणम् ॥ २५, ११५
उक्तो वा भस्मनि ॥ २५, ११६
शिष्टभक्षप्रतिषिद्धं दुष्टम् ॥ २५, ११६

अर्थात, होमद्रव्य यदि दुष्ट हो तो उसे जल में फेंक देना चाहिए उसका हवन न करना चाहिए। अथवा, दुष्ट हवि को राख में गिरा देना चाहिए। शिष्टपुरुषों द्वारा प्रतिषिद्ध माँस आदि अभक्ष्य वस्तु दुष्ट कहलाती है। अतएव मनुस्मृति में माँसभक्षण करने पर प्रायश्चित्त का विधान किया गया है—

'जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च, सप्तरात्रान्यवान्पिबेत्' ११, १५२

अर्थात्, अभक्ष्य पदार्थ मांस का भक्षण करके सात दिन पर्यन्त केवल यवागू का पान करे अन्य किसी वस्तु का सेवन न करे।

चतुर्विध द्रव्योंके विषयमें प्रमाण ।

१—'घृतं तीव्रं जुहोतन' (यजु० ३, २) अर्थात्, अग्नि में सब दोषों के निवारक घी का हवन करना चाहिए।

२—'घृतेन वर्द्धयामसि' (यजु० ३, ३) यज्ञसिद्धि के लिए घी से अग्नि को प्रदीप्त करो। यज्ञसिद्धि क्या है, इसे 'निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु' (यजु० २२, २२) इस मंत्र की व्याख्या में शतपथ ब्राह्मण स्पष्ट करता है 'निकामे निकामे वै तत्र पर्जन्यो वर्षति यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते' (१३, १, १) अर्थात्, यहां यज्ञ किया जाता है वहां अभिलषित समय पर अभिलषित वृष्टि होती है। यह 'यज्ञ' शब्द देवपूजा संगतिकरण दान, इस त्रिविधार्थक 'यज' धातु से 'यज याच यत' आदि अष्टाध्यायी सूत्र से (३, ३, ९०) से 'नङ्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है।

३—'अस्मिन् हव्या जुहोतन' (यजु० ३, १) अर्थात्, इस अग्नि में दान-आदान-भक्षण करने योग्य वस्तुओं को आहुतिरूप में डालो। एवं, इस मंत्र में आहवनीय पदार्थों का ही ग्रहण किया गया है, अभक्ष्य पदार्थों का नहीं।

यहां सर्वत्र पशुवधजन्य चर्बी आदि 'घृत' नहीं, अपितु गाय आदि पशुओं के दूध में से जो संसारप्रसिद्ध उत्तम पदार्थ निकलता है वह ही 'घृत' है। वैसे ही आयुर्वेद में भी चर्बी आदि के भिन्न गुण हैं और घृत के भिन्न हैं। अतः, घृतादि हव्य पदार्थों का ही हवन करना चाहिए चर्बी आदि का नहीं। एवं, दूध-घी के लिए ही यज्ञ में पशु लाए जाते थे, वध के लिए नहीं, जैसे कि चरक के निम्न प्रमाण से विदित होता है—

"आदिकाले खलु यज्ञेषु पशवः समालभनीया बभूवुर्नारम्भाय प्रक्रियन्ते स्म । अतश्च प्रत्यवरकालं पृषध्रेण दीर्घसत्रेण यजमानेन पशूनामलाभाद् गवामालम्भः प्रावर्तितः । त दृष्ट्वा प्रव्यथिता भूतगणास्तेषाञ्चोपयोगादुपकृतानां गवां गौरवाच्चापहृताग्नीनामुपहतमनसामतीसारः पूर्वमुत्पन्नः पृषध्रयज्ञे ।" (चरक विमा० १०, ३)

अर्थात्, प्राचीन काल में यज्ञों में पशु उत्तम लाभ के लिए लाए जाते थे वध के लिए नहीं। पुनः अर्वाचीन काल में दीर्घसत्र करने वाले 'पृषध्र' यजमान ने पशुओं के लाभ को तिरस्कृत करके गौओं का वध प्रारम्भ कर दिया। उस अनाचार को देखकर उन पशुओं के अत्युपयोगी होने, किंवा महोपकारी गौओं के गौरव के कारण सब प्राणिसमुदाय व्याकुल हो उठे। और उस पृषध्र के यज्ञ में फलस्वरूप पहले पहल यज्ञविध्वंसक, दुष्ट मन वाले उक्त यज्ञकर्ताओं में अतीसार का रोग उत्पन्न हुआ।

एवं, यहां स्पष्टरूप से बतलाया गया है कि यज्ञ में गो-बलि और गोमांस-भक्षण से ही अतीसार रोग की उत्पत्ति हुई है। इस के अतिरिक्त मांस कभी पशुवध के विना प्राप्त नहीं होता और पशुवध कभी सुख-शान्ति दायक नहीं, जैसा कि मनु ने लिखा है—

"नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां, मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यः, तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥" (मनु० ५, ४८)

एवं, 'आदिकाले खलु' इत्यादि उपर्युक्त चरक-प्रमाण से पता लगा कि पृषध्रयज्ञ से पहले यज्ञों में पशुवध का प्रचार न था। मनुस्मृति के ५, ३९ में जो 'यज्ञे वधोऽवधः' का उल्लेख है, वह उसी अध्याय के 'न च प्राणिवधः स्वर्ग्यः' से पूर्वापर-विरोधी होने के कारण प्रक्षिप्त ही जान पड़ता है।

४—"अथो भैषज्ययज्ञा वा एते यच्चातुर्मास्यानि तस्मादृतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते। ऋतुसन्धिषुवैं व्याधिर्जायते।" (गो० ब्रा० १, १९)

अर्थात्, ये चातुर्मास्य यज्ञ भैषज्य पदार्थों से किए जाने वाले यज्ञ हैं। अतएव ये ऋतु-सन्धियों में प्रयुक्त किए जाते हैं, यतः ऋतु-संधियों में ही रोग उत्पन्न होते हैं। यहां 'भैषज्ययज्ञाः' से दुष्ट द्रव्य मांसादिकों का सुतरां निषेध है।

५—एवं, 'वैश्वदेवी' (का० ४, १३६) इस श्रौतसूत्र में बतलाया गया है कि चातुर्मास्य यज्ञों में वैश्वदेवी हव्याहुति दूध-निर्मित खीर आदि पदार्थों की होती है।

६—'न मांसमश्नीयात्, यन्मांसमश्नीयात्, यन्मिथुनमुपेयादिति नेत्वेवैषा दीक्षा।' (श० ६, २)

अर्थात्, मनुष्य मांस भक्षण न करे। यदि वह मांस भक्षण करता है अथवा व्यभिचार कर्म करता है तो वह यज्ञदीक्षा का अधिकारी नहीं। अतएव कात्यायनश्रौत्रसूत्र (७. ११३,११८) में लिखा है "क्षीरव्रतौ भवतः। सपत्नीको यजमानो व्रते दुग्धं पिवेत्, यवागू राजन्यस्यामिक्षा वैश्यस्य।" अर्थात् यज्ञदीक्षा लेने से पूर्व सपत्नीक यजमान ब्राह्मण दुग्धपान का व्रत धारण करे, सपत्नीक क्षत्रिय यवागू-व्रती, और सपत्नीक वैश्य श्रीखण्ड-पायी हो। अतः स्पष्ट है कि मांससेवी यज्ञदीक्षा नहीं ले सकता।

७—पशुवध के पक्षपोषक सायणाचार्य ने भी दुग्धपक्ष को मान कर गोदोहन और क्षीर-पाक में दो मंत्रों का विनियोग किया है—

'गां दोग्धुमध्वर्य्युरयक्ष्मा वः प्रजय इति मन्त्रेण वत्सं

बन्धनान्मुच्येत्, क्षीरं श्रपयितुं मातरिश्वनो धर्म इति मन्त्रेणोखां गार्हपत्ये स्थापयेत्' (कृ० य० तै० सं० १, ६, ९)

अर्थात्, अध्वर्यु गाय को दुहने के लिए 'अयक्ष्मा वः प्रजय' इस मंत्र का उच्चारण करके बछड़े को खूंटे से खोले। एवं, खीर पकाने के लिए 'मातरिश्वनो घर्मः' इस मंत्र का उच्चारण करके पतीली को गार्हपत्याग्नि पर धरे। इस प्रसंग से विदित होता है यज्ञ में दूध का ही उपयोग सायणाचार्य को अभिप्रेत है, जोकि प्रकारान्तर से पशुवध निषेध का द्योतक है।

८—'अन्वारब्धेषु पयो जुहोति द्वे सृती इति' (का० १९, ८१)

'शेषं यजमानो भक्षयतीदं हविरिति' (का० १९, ८२)

यहां कहा गया है कि यज्ञों में 'द्वे सृती' इत्यादि मंत्र का उच्चारण करके दुग्ध-पदार्थ का हवन करे और अवशिष्ट हवि को अन्त में यजमान 'इदं हविः' आदि मंत्र का उच्चारण करके भक्षण करे। एवं, यहां भी स्पष्टतया यज्ञ में दूध का ही उपयोग बतलाया गया है, मांस का नहीं।

९—एवं, निम्नलिखित याज्ञवल्क्य-जनक संवाद से भी सिद्ध होता है कि यज्ञ में दूध आदि सात्विक पदार्थों का ही उपयोग है, हिंसाजन्य माँस-चर्बी आदि का नहीं—

"तद्धैतज्जनको वैदेहः याज्ञवल्क्यं पप्रच्छ वेत्थाग्निहोत्रं याज्ञवल्क्या इति। वेद सम्राडिति। किमिति। पय एवेति। यत् पयो न स्यात् केन जुहुया इति। व्रीहियवाभ्यामिति। यद् व्रीहियवौ न स्याताम्, केन जुहुया इति। या अन्या ओषधय इति। यदन्या ओषधयो न स्युः केन जुहुया इति। वानस्पत्येनेति। यद्ध वानस्पत्यो न स्यात् केन जुहुया इति। स होवाच, नवा इह तर्हि

पुस्तक-क्रम ठीक है, असावधानी से पृष्ठसंख्या
६ के आगे ९ छप गयी है।

किञ्चनासीदथ, तद् हूयतैव सत्यं श्रद्धायामिति, वेत्थाग्निहोत्रं याज्ञवल्क्य इति धेनुशतं ददामि" (श० कां० ११)

अर्थात्, वैदेह जनक ने याज्ञवल्क्य से पूछा 'याज्ञवल्क्य! जानते हो यज्ञहवि क्या है?" उत्तर मिला 'हां, सम्राट् जानता हूं'। 'क्या है' 'दूध ही है'। 'यदि दूध न हो तो किस से हवन करें' 'धान्य-जौ से'। 'यदि धान्य-जौ न हों तो किससे हवन करें, 'जो दूसरी ओषधियां हैं, उन से'। 'यदि दूसरी ओषधियाँ भी न हों तो किस से हवन करें' 'वनस्पति की हवि से'। 'यदि वनस्पति की हवि भी न हो तो किस से हवन करें'। तब याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया 'ऐसे अवसर पर जब कि कोई भी हवि न थी तब भी प्राचीन आर्यों ने हवन किया हो और वह श्रद्धा-अग्नि में सत्य-हवि का हवन था।' इस उत्तर पर प्रसन्न होकर जनक ने कहा 'याज्ञवल्क्य आप यज्ञहवि को जानते हो, मैं इसके उपहार स्वरूप सौ गौएं आप की भेंट करता हूं।'

इस प्रकरण में मांस आदि दुष्ट हवि का सर्वथा उल्लेख नहीं, प्रत्युत दूध-ओषधि-वनस्पति इन में से किसी भी हवि के प्राप्त न होने पर श्रद्धाग्नि में सत्यहवि का विधान किया गया है। और साथ ही यह भी विदित होता है कि उस समय यज्ञों में पशुवध का प्रचार न था।

१०—इसीप्रकार आयुर्वेद में भी मांस-चर्बी आदि से यज्ञ का विधान नहीं, अपितु गोदुग्धजन्य घी आदि से ही हवन करना बतलाया है। जैसे कि चरक में लिखा है—

'नाऽशुचिरुत्तमाज्याक्षततिलकुशसर्षपैरग्निं जुहुयात्।'

अर्थात्, जो पदार्थ भलीप्रकार साफ-सुथरे किए गए हों उन उत्तम प्रकार के घी, लाजा, तिल, कुश, सर्षप से हवन करे।

'मधु सर्पिषा त्रिस्त्रिर्जुहुयात्' (च० वि० अ० ८)

यहां मधु-घी से हवन करना बतलाया गया है। मधु के बारे में शतपथ ने लिखा है—'ओषधीनां वा परमो रसो यन्मधु' (श० ११.५) मधु ओषधियों का उत्कृष्ट रस है।

एवं, चरक के उपर्युक्त दो प्रमाणों से विदित हुआ कि आयुर्वेद में भी घी आदि का ही हवन उपदिष्ट है मांसादिक का नहीं।

११—'अपामार्गहोमः' (कात्या० १६, २९)
'अजाक्षीरमेके' (कात्या० १८, १) 'अजाक्षीरेणैके जुह्वति शाखान्तरात्' (कर्काचार्यभाष्य)।

यहां अपामार्ग ओषधि और बकरी के दूध का हवन में विधान है बकरी के मांस का नहीं।

बकरी का दूध विशेषतया सर्वरोग-निवारक होता है जैसे कि शतपथ में लिखा है—'अजा ह सर्वा ओषधीरत्ति सर्वासामेवैनामेतदोषीनां रसेनाच्छृणत्ति' (श० पृ० ३४९) अर्थात् क्योंकि बकरी जंगल में चरती हुई सब प्रकार की ओषधियें खाती है, अतः इन सभी ओषधियों का रस इसके दूध में विद्यमान होता है। अतः, इसका घी यज्ञोपयोगी है।

१२—'घृतेन ह वा एष देवाँस्तर्पयति' (शत० ११, २५)
'अग्नये रसवतेऽजाक्षीरं निर्वपेत्' (कृ० य० तै० सं० २, ४)

यहां यज्ञ में घी और बकरी के दूध का विधान किया गया है।

१३—निम्न वेदमंत्र से भी यही सिद्ध होता है कि यज्ञ में दूध-घी-मधु आदि का ही उपयोग है, मांस का नहीं—

'ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च, ये चेमे भूम्यामधि । तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ।' (अथर्व० १०, ९, ३)

यहां वेदमंत्र में पठित 'सर्वदा' पद से स्पष्टतया आज्ञप्त है कि यज्ञादि में सर्वत्र दूध-घी-मधु का उपयोग करना चाहिये। अतएव यजुर्वेद के प्रारम्भ में ही 'यजमानस्य पशून् पाहि' (यजु० १) यह पशुरक्षा-विधायक मंत्र पठित है। महीधरभाष्य-भक्तों के संतोष के लिए उसी का भाष्य यहां उद्धृत किया जाता है, जिसमें लिखा है कि वन में विचरते हुए यजमान के पशुओं की चोर-व्याघ्र आदि से रक्षा कर--

'यजमानस्य पशून् अरण्ये सञ्चरतश्चोरव्याघ्रादिभयात् पाहि रक्षेति'

एवं, यहां महीधर ने भी पशुवध स्वीकृत नहीं किया। इसीप्रकार कर्काचार्य ने 'यजमानस्य पशूनित्यग्न्यगारस्यान्यतरस्य पुरस्ताच्छाखामुपगूहति' (का० ४, ४०) सूत्र के भाष्य में 'पशूनान्तु क्रत्वङ्गभूतानां पालनमिहेष्यते' लिखते हुए यज्ञाङ्गभूत पशुओं का पालन ही बतलाया है मारण नहीं।

इसीप्रकार 'ओषधे त्रायस्व, स्वधिते मैनं हिंसीः' (य० ४, १) इस मंत्र का उच्चारण करके जो याज्ञिक लोग पशुवध करते हैं उन्हें अपने अभिमत भाष्यकार महीधर का अर्थ देखना चाहिये, जोकि उक्तमंत्र की व्याख्या में लिखता है--

'ओषधे कुशतरुणं देवता। हे ओषधे! कुशतरुण! त्वं यजमानं त्रायस्व क्षुराद् रक्ष। स्वधिते क्षुरो देवता। हे स्वधिते क्षुर! एनं यजमानं मा हिंसीः।'

एवं, महीधरने भी उपर्युक्त मंत्र का अर्थ रक्षापरक ही किया है। फिर समझ नहीं पड़ता कि याज्ञिक लोग पशुवध कर्म में इसे कैसे विनियुक्त करते हैं। यदि यह कहा जावे कि कात्यायन ने ऐसा लिखा है तो उसका किया हुआ विनियोग मंत्रार्थ के सर्वथा विपरीत होने से त्याज्य है।

वेद में भी 'ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति। पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति, ते न आत्मसु जाग्रति।' (अ० १९. ४८. ५)। इत्यादि मंत्रों में सभी पशुओं की रक्षा की आज्ञा है। उनके महोपकार को भुलाकर निरपराध पशुओं का जो यज्ञ में हनन करते हैं, वे महाकृतघ्नी हैं।

१४—शतपथ ब्राह्मण में गौ की महिमा इसप्रकार गायी गयी है—

'महाँस्त्वेव गोर्महिमेत्यध्वर्युरेतान्येव दशवीर्याण्याह। अध्वर्युर्गां महयति। गोर्वै प्रतिधुक्, तस्यै शृतं, तस्यै शरः, तस्यै दधि, तस्यै मस्तु, तस्या आतञ्चनं, तस्यै नवनीतं, तस्यै घृतं, तस्या आमिक्षा, तस्या वाजिनम्' (शत० ३, ३, ३)

अर्थात्, अध्वर्यु 'महाँस्त्वेव गोर्महिमा' इत्यादि मंत्र का उच्चारण करके गाय की इन १० महिमाओं को कहता है। और इसप्रकार गौ के इन १० महोपकारों का बखान करता हुआ उसका सत्कार करता है। प्रातः दोहा जानेवाला धारोष्ण दूध, खीर, रबड़ी-मावा, दही, दधिजल, दही से फाड़े हुए गर्म दूध का जल, मक्खन, घी, गर्म दूध में दही का छींटा देने पर फटे दूध का जल छानकर बचा हुआ शेष दधि सदृश कठिन पदार्थ, और मलाई—ये १० गौ के महत्त्वशाली पदार्थ हैं।

'प्रतिधुक् श्रुनेः' (का० ५, २८३) सूत्र की व्याख्या करते हुये कर्काचार्य ने 'प्रतिधुक्' का अर्थ किया है 'प्रतिधुक्शब्देन च प्रातदुग्धमात्रं धारोष्णमभिधीयते'।

इसी प्रकार 'आमिक्षा' के बारे में कर्कभाष्य के ४३१ पृ० पर लिखा है—'पयस्तप्तं कृत्वोपरि दध्यामिच्योदकमासाव्य यद् घनीभूतं दधिसदृशं द्रव्यं स्थाल्यां तिष्ठति तदामिक्षोच्यते'

एवं, उपर्युक्त १४ प्रमाणों में शतपथ ने गाय के दूध आदि का ही यज्ञों में उपयोग बतलाया है, मांस-चर्बी का नहीं। पशुवध करने पर ये बल-बुद्धि-वर्धक सात्विक पदार्थ कहां से प्राप्त होंगे? अहो! कहां तो यज्ञों में दूध-घी आदि सर्वोत्तम पदार्थों का उपयोग और कहां उनमें पशुवध! यह कुत्सित बुद्धि का ही परिणाम है।

एवं, उपर्युक्त १४ प्रमाणों से चतुर्विध होमद्रव्य का प्रतिपादन करते हुये गोमहिमा का पर्याप्त दिग्दर्शन कराया जा चुका। इस प्रकरण से स्पष्टतया विदित होगया कि प्राचीन काल में यज्ञों में गाय के दूध-घी आदि पदार्थों का ही उपयोग किया जाता था, मांस-चर्बी आदि का नहीं। अतः, यज्ञों में पशुबलि सर्वथैव निन्दनीय व त्याज्य है।

छाग–महिमा

आधुनिक यज्ञों में अज्ञानी पुरुषों द्वारा बकरी-बकरे की बलि भी बहुत दी जाती है। अतः, अब इसी विषय पर शास्त्रीय विचार किया जाता है—

१ – बृहत्संहिता के ६५ वें अध्याय में लिखा है—

छागशुभाशुभलक्षणमभिधास्ये, नवदशाष्टदन्तास्ते ।
धन्याः स्थाप्याः वेश्मनि, सन्त्याज्याः सप्तदन्ता ये ॥१॥

कुट्टकः कुटिलश्चैव, जटिलो वामनस्तथा ।
ते चत्वारः श्रियः पुत्राः, नालक्ष्मीके वसन्ति वै ॥२॥

वर्णैः प्रशस्तैर्मणिभिश्च युक्ता, मुण्डाश्च ये ताम्रविलोचनाश्च ।
ते पूजिता वेश्मसु मानवानां, सौख्यानि कुर्वन्ति यशः श्रियञ्च ॥३॥

अर्थात्, छागों के शुभ-अशुभ लक्षण बतलाता हूं, सुनिए— जो छाग आठ-नौ-दस दांतों वाले हैं, वे ऐश्वर्यवर्धक हैं उन्हें घर में रखना चाहिए, और जो सात दांतों वाले हैं वे त्याज्य हैं उन्हें घर में न रखना चाहिये। कुट्टक, कुटिल, जटिल, वामन, ये चार प्रकार के छाग लक्ष्मीस्वरूप हैं, इनकी उपस्थिति में निर्धनता का उस घर में निवास नहीं होता। जो प्रशस्त रूप-रंग वाले और मणियों से सजे हुए तथा मुण्डित और ताम्रवर्ण की आँखों वाले छाग हैं वे घरों में मनुष्यों से सुपालित हुए २ सौख्य-यश-श्री के बढ़ाने वाले होते हैं।

एवं, यहां उत्तम लाभ के लिए छागों के पालने का आदेश है, मारने का नहीं।

२—सुश्रुत सूत्रस्थान के ४५ वें अध्याय में छाग के दूध के गुण इसप्रकार लिखे हैं—

दीपनं लघु संग्राहि, श्वासकासास्रपित्तनुत्।
अजानामल्पकायत्वात्, कटुतिक्तनिषेवणात्।
नात्यम्बुपानाद् व्यायामात्, सर्वव्याधिहरं पयः॥

अर्थात्, बकरी का दूध जठराग्नि-प्रदीपक, हलका, संग्राही और सांस-खांसी-रक्तद्बाव-पित्त को दूर करने वाला है। बकरियों के स्वल्पकाय होने से, कड़वी-तीखी ओषधि-वनस्पतियों के सेवन से, अधिक जलपान न करने से, और विषम से विषम ऊंचाई पर चढ़ने आदि से पर्याप्त व्यायाम हो जाने के कारण उनका दूध सबप्रकार के रोगों को हरने वाला है।

एवं, भला जिस बकरी के दूध के इतने अद्भुत गुण हों उसकी रक्षा करनी चाहिए, न कि उसे मार कर उसकी बलि देनी चाहिए।

३—इसीप्रकार महाभारत के उद्योगपर्व में लिखा है—

अजोक्षा चन्दनं वीणा, आदर्शौ मधुसर्पिषी।
विषमौदुम्बरं शङ्खाः स्वर्णनाभोऽथ रोचना॥
गृहे स्थापयितव्यानि, धन्यानि मनुरब्रवीत्।
देवब्राह्मणपूजार्थं, अतिथीनां च भारत॥

अर्थात्, मनु ने कहा है कि देव-ब्राह्मण-अतिथियों के सत्कार के लिए गृहस्थी को घर में दूध-घी आदि सर्वोत्तम धन को देने वाले अजादि पशुओं को रखना चाहिए।

४—दुग्ध-प्रयोजन के अभाव में भैषज्ययज्ञों में 'अजा' शब्द से 'अजा' नामक महौषधि का ग्रहण करना चाहिए। जैसे कि सुश्रुत चिकित्सास्थान के ३० वें अध्याय में अजा के संबन्ध में लिखा है—

अजास्तनाभकन्दा तु, सक्षीरा क्षुपरूपिणी।
अजा महौषधी ज्ञेया, शङ्खकुन्देन्दुपांडुरा॥

अर्थात्, अजा महौषधी का लक्षण यह है कि उसका कन्द बकरी के स्तन के समान होता है, उसमें से दूध निकलता है, उसकी शाखायें और जटायें छोटी होती हैं, और उसका रंग शंख कुन्दपुष्प-चन्द्रमा के समान सफेद होता है।

५ - यज्ञ में सोलह प्रकार के ऋत्विज् होते हैं। उनमें से एक सुब्रह्मण्या है, जिसे बकरा दान में दी जाती है, जैसे कि ताण्ड्य-महाब्रा० २१, १४, १९ में लिखा है 'अजा सुब्रह्मण्यायै'। इससे भी विदित होता है कि दूध-घी के लिए बकरी बड़े महत्त्व का पशु है। अतः, उसका वध असंगत है।

यज्ञादिकों में कभी बासी दूध का उपयोग नहीं किया जाता, अतएव प्राचीन काल में दूध देने वाले गाय-बकरी आदि पशु यज्ञों में लाये जाते और रखे जाते थे, वध के लिए नहीं। बासी दूध के गुण धारोष्ण दूध की तरह नहीं, जैसे कि चरक में लिखा ''क्षीरम्पर्युषितं सर्वं, गुरु विष्टम्भि दुर्जरम्' अर्थात्, सब प्रकार के बासी दूध भारी, कब्ज, और दुष्पच होते हैं।

यदि कोई यह कहे कि आखिरकार दूध भी तो खून से ही बनता है, अतः जैसे खून पी लिया वैसे दूध पी लिया, खून-दूध में क्या भेद है। तो, उसका यह कहना ठीक नहीं। क्योंकि 'रसात् स्तन्यं प्रवर्तते' (चरक चि० १९, १५) यहां चरक ने स्पष्ट बताया है कि रस से दूध बनता है रक्त से नहीं।

जो यह मानते हैं कि पशु को मार कर उससे हवन करने से यजमान और पशु, दोनों स्वर्ग जाते हैं, यह तो सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि इसमें वेद का कोई प्रमाण नहीं।

आत्मा नित्य है, अतः पशु को मारने से कोई हिंसा नहीं,

ऐसा जो कुतर्क करते हैं, उसके खण्डन के लिए गोतममुनि कहते हैं--'न कार्याश्रयकर्तृवधात्' (न्याय० ३, १, ६) इसपर भाष्यकार वात्स्यायन लिखते हैं--

'न ब्रूमो नित्यस्य सत्वस्य वधो हिंसा, अपित्वनुच्छित्तिधर्मकस्य सत्वस्य कार्याश्रयस्य शरीरस्य स्वविषयोपलब्धेश्च कर्तृणामुपघातः पीड़ा वैकल्यलक्षणः, प्रबन्धोच्छेदो वा प्रमापणलक्षणो वा वधो हिंसेति। कार्य्यन्तु सुखदुःखसंवेदनं, तस्यायतनमधिष्ठानमाश्रयः शरीरम्। कार्याश्रयस्य शरीरस्य स्वविषयोपलब्धेश्च कर्तृणामिन्द्रियाणां वधो हिंसा न नित्यस्याऽऽत्मनः'।

अर्थात्, नित्य आत्मा को मारने का नाम हिंसा नहीं, अपितु वह नित्य जीव जिस शरीर-साधन के द्वारा सुख दुःख रूपी अपने कार्य का अनुभव करता है और जो इन्द्रियां अपने २ विषयों को ग्रहण करने से कर्ता हैं, उनके नाश व पीड़न का नाम हिंसा है। अतः, पशुवध करने पर हिंसा नहीं होती, यह विचार सर्वथा अशुद्ध है।

जब शरीर में हिंसा आदि के वेग उठें, तब क्या उन वेगों के अनुसार हिंसा आदि करनी चाहिये या नहीं, इस पर चरक ने लिखा है—

देहप्रवृत्तिर्या काचिद् वर्तते परपीडया।
स्त्रीभोगस्तेयहिंसाद्याः तस्या वेगान् विधारयेत्॥

अर्थात्, स्त्रीभोग-चोरी-हिंसा आदि जो कोई परपीड़ा संबन्धी देह-प्रवृत्ति है, उसके वेगों को रोकना चाहिये। अर्थात्, हिंसा आदि नहीं करनी चाहिये। अन्यथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष,

इन चतुर्विध पुरुषार्थों के साधक जाति-देश-काल से अटूट यम-नियमों का न आचरण पूरा हो, और न यम-नियम-सेवी महाव्रती हों, तथा न किसी जाति, किसी देश और किसी काल में अटूट अहिंसा आदि व्रत हों। परन्तु ये यम-नियम व्रत सर्वत्र एकरूप में वर्तमान होने के कारण 'महाव्रत' कहलाते हैं, जैसे कि योग (२, ३१) में लिखा है—

'जातिदेशकालसमयाऽनवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्'

यहां हिंसा से कृत, कारित और अनुमोदित तीनों प्रकार की हिंसा 'हिंसा' मानी गयी है।

सायणाचार्य को भी यज्ञ में पशुहिंसा पसन्द न थी, यह उसके लेख से अनुमित होता है। परन्तु यज्ञसंबन्धी मत्रों के अर्थ को न समझने के कारण उसने कहीं कहीं अपने ही लेख के विरुद्ध भी लिख दिया है। जैसे कि कृ० य० तै० ६६९ पृ० में 'क्रूरं पशुहिंसादि' से पशुहिंसा को क्रूर कर्म मानकर पुनः ६, ६, १ में 'क्रूरादिदोषाणां होमेन समाहितत्वात्' से उन्हीं क्रूरकर्मों को यज्ञ में कर्तव्य कह दिया। भला, जब यजुर्वेद के प्रथम ही मंत्र 'इषे त्वोऽर्ज त्वा' में श्रेष्ठतम कर्मों के करने की आज्ञा है, तब इस निकृष्टतम पशुहिंसा के क्रूर कर्म की होम से कैसे शान्ति हो सकती है, जब तक कि उस हिंसक पापी को उसको दण्ड न मिल जावे।

शतपथ में भी धर्मसाधन अहिंसा का ही यज्ञप्रकरण में प्रतिपादन है, हिंसा का नहीं। जैसे कि लिखा है—

'सं वां मनांसि संव्रता समुचितान्याकरम्। अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं न इषमूर्ज्जं यजमानाय धेहीति शान्तिमेवाभ्यामेतद् वदति

यजमानस्य प्रजायै पशूनामहिंसायै' (य० १२, ५८ तथा श० १३, ४, ८)।

यहां शतपथ ने 'सं वां मनांसि' आदि वेदमंत्र का अर्थ करते हुए पशुओं की अहिंसा का आदेश दिया है।

जो यह कहते हैं कि प्राचीन काल में अश्वमेध यज्ञ में अश्व का हनन किया जाता था, यह भी ठीक नहीं, क्योंकि उसी शतपथ में लिखा--

'इदं मा हिंसीरेकशफं पशुमित्येकशफो वा एष पशुर्यदश्वस्तं मा हिंसीरिति' (श० पृ० ६६८)

यहां 'इदं मा हिंसीरेकशफं' इत्यादि यजुर्वेद मंत्र की व्याख्या करते हुए 'अश्व' को न मारने की आज्ञा दी गयी है।

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २७२ में दर्शाया है कि यज्ञ में पशुहिंसा करने से यजमान का सर्व तप नष्ट हो गया—

तस्य तेनानुभावेन, मृगहिंसात्मनस्तदा।
तपो महत् समुच्छिन्नं, तस्माद्धिंसा न यज्ञिया॥

अहिंसा सकलो धर्मोऽहिंसा धर्मस्तथाविधः।
सत्यन्तेऽहं प्रवक्ष्यामि, यो धर्मः सत्यवादिनाम्॥

इस प्रकरण में महाराज युधिष्ठर ने भीष्म पितामह से पूछा है कि धर्म तथा सुख के लिए यज्ञ कैसा करना चाहिये। उसके उत्तर में पितामह ने एक तपस्वी ब्राह्मण-ब्राह्मणी दम्पती का वृत्तान्त देते हुए बतलाया है कि किसप्रकार उस तपस्वी ब्राह्मण का महान् तप, यज्ञ में पशुवलि देने के लिए एक वन्य मृग को मारने की इच्छा मात्र से विनष्ट होगया। इसलिए यज्ञ में कभी

हिंसा न करनी चाहिये। अहिंसा सार्वत्रिक और सार्वकालिक नित्य धर्म है।

६—यदि सूत्रग्रन्थों में कहीं यज्ञ के लिए 'छाग' का विधान है, तो वहां जो लोग बकरी-बकरे को वध के लिए ग्रहण करते हैं, वह वेदविरुद्ध तथा यज्ञप्रकरण-विरुद्ध होने से असंगत हैं। जैसे कि कर्काचार्य ने 'छागं मंत्राम्नात्' (का० ६, ७२) सूत्र का भाष्य करते हुए लिखा है—

'सच पशुश्छागो गृहीतव्यः । कुत एतत् ? मन्त्राम्नात्। 'अग्नीषोमौ छागस्य हविष आत्ताम।' (का० पृ० ३८५)

यह वेदविरुद्ध होने से त्याज्य है। ऐसे स्थलों में 'छाग' का यज्ञानुसारी अर्थ 'बकरी का दूध है। छाग्या इदं छागम् पयः, यहां 'तस्येदमित्यण्' (पा० ४, ३, १२) सूत्र से छाग से 'अण्' प्रत्यय है। 'छाग' शब्द 'बकरी के दूध' के लिए प्रयुक्त होता है, इसमें चरक अध्या० २४ का निम्न प्रमाण है—

छागं कषायमधुरं, शीतं ग्राहि पयो लघु।
रक्तपित्तातिसारघ्नं, क्षयकासज्वरापहम्॥

यहां बकरी के दूध को कसैला, मधुर, शीत, ग्राही, हलका, रक्तविकार पित्तविकार और अतिसार नाशक, तथा क्षय-खांसी ज्वर को हन्ता बताकर उसके लिए स्पष्ट तौर पर 'छागं पयः' का उल्लेख किया है। अतः, कर्काचार्य ने जो छाग से वध के लिये 'छागपशु' अर्थ किया है, वह सर्वथा भ्रान्तिमूलक है।

७— इसीप्रकार 'उत्तानं पशुं कृत्वाऽग्रेण नाभिं तृणं निदधात्योषध इति' (६, १२८) और 'स्वधित इति प्रज्ञातयाभिनिधाय च्छित्वा०' (६, १२९) इत्यादि कात्यायन सूत्रों में जो पशुवध

का विधान किया गया है कि 'स्वधिते मैनं हिंसीः' इत्यादि मंत्र का उच्चारण करके तलवार को पशु के पेट पर धरके और उसको घृतसंयुक्त धारा से चिन्हित करके यहां पेट पर तृण रखा गया है वहां से उस पशु को काटे-यह कात्यायन की विनियोग-व्यवस्था के विरुद्ध होने से प्रक्षिप्त है। विनियोग-व्यवस्था का० परि० सू० में इसप्रकार बतलायी गयी है—

'तेषामारम्भेऽर्थतो व्यवस्था तद्वचनत्वात्' (सू० ४८)
'मंत्रान्तैः कर्मादिः सान्निपात्योऽभिधानात्' (सू० ४९)

कर्क-भाष्य के अनुसार इन सूत्रों का भाव यह है कि किसी कर्म के प्रारम्भ में उन वेदमंत्रों का विनियोग उनके अर्थ के अनुकूल होता है प्रतिकूल नहीं, क्योंकि वह मंत्र उसी क्रियमाण कर्म के अर्थ को कहता है अप्रासंगिक अर्थान्तर को नहीं। एवं, उस विनियोग-व्यवस्था में इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि मंत्र का उच्चारण करके कर्म को प्रारम्भ करना चाहिए, क्योंकि मंत्रोच्चारण पर ही मंत्र कर्म को बतलाता है और फिर उस कर्म का अनुष्ठान किया जाता है। परन्तु, इस व्यवस्था के विपरीत विनियुक्त मंत्र 'स्वधिते मैनं हिंसीः' में तो पशुहिंसा न करने का आदेश है और उसका उच्चारण करके पशुहिंसा की जाती है। अतः, विनियोग-व्यवस्था के विरुद्ध होने के कारण हिंसापरक कात्यायन सूत्र प्रक्षिप्त हैं।

८—अभी ऊपर दर्शाया जा चुका है कि यज्ञप्रकरण में 'छाग' का अर्थ बकरी का दूध होता है। उसीप्रकार 'वपा' और 'मेदस्' शब्द भी वेदमंत्रों में भिन्नार्थक हैं। 'वपा' का अर्थ है धारोष्ण दूध, और 'मेदस्' का अर्थ है दूध का स्निग्ध भाग घी।

एवं, मेदस् शब्द गेहूं के स्निग्ध भाग का भी वाचक है, अतएव लोक में उसका मैदा नाम प्रसिद्ध है। 'मेदस्' शब्द 'ञिमिदा स्नेहने' धातु से बनता है और 'वपा' शब्द 'वप' धातु से। वपति छिनत्ति दोषं, आरोपयति च बलादिकमिति वपा दुग्धम्।

इसलिए 'अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसोऽनुब्रूहि' इत्यादि स्थलों में बकरी के दूध, गो के दूध, और घृत के हवन करने का ही आदेश है।

९---एवं, मनु ने—

समुत्पत्तिं च मांसस्य, वधबन्धौ च देहिनाम्।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत, सर्वमांसस्य भक्षणात्॥ (५, ४९)

इस श्लोक में 'सर्वमांसस्य भक्षणात्' लिखते हुए सभी जीवों के मांस भक्षण को घृणित बतलाया है। और इसीप्रकार चरक ने चि० अ० १४ में—

निवृत्तामिषमद्यो यो, हिताशी प्रयतः शुचिः।
निजागन्तुकरुन्मादैः सत्ववान् न स युज्यते॥

लिखते हुए बतलाया है कि जो मनुष्य चाहता है कि उसे ज्वर आदि शारीरिक रोग, अग्निदाह-वायुप्रहार-विषप्रभाव आदि बाह्य निमित्त से आने वाले रोग, और पागलपन आदि मानसिक रोग न हों, उसे चाहिए कि वह कभी मांस-मदिरा का सेवन न करे, हितभोजी हो, इन्द्रियों को वश में रखे, और पवित्र रहे। एवं, यहां स्पष्ट बतलाया है कि मांसभक्षण से उन्मादादि तीनों प्रकार के रोग होते हैं। तो क्या मांस-चर्बी के हवन से वायु-जल के दूषित हो जाने से वे रोग न होंगे? अवश्य होंगे। अतः, यज्ञ में पशुवध सर्वथैव त्याज्य है।

१०—ऋग्वेद १, १६२, ३ में छाग शब्द आया है—

'एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना,
पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं तत् पुरोडाशमर्वता,
त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥'

इस मंत्र का अर्थ सायण ने इसप्रकार किया है—(एष छागः) यह सींगों रहित बकरा (अश्वेन वाजिना) शीघ्र व्यापक होने वाले घोड़े के साथ (पूष्णः भागः) पोपक अग्नि का भाग (विश्वदेव्यः) सर्वदेव पूजा के योग्य है। (अभिप्रियं) तृप्त करने वाले (पुरोडाशं) पहले देने योग्य (एनं) इस बकरे को (त्वष्टा) सर्वोत्पादक देव (अवता) चलने-फिरने वाले घोड़े के साथ (सौश्रवसाय) देवों के शोभन अन्न के निमित्त (अभिजिन्वति) प्रीतिहेतुक करता है।

'य आमं मांसमदन्ति' (अथ० ८, ६, २३)

इस मंत्र के भाष्य में सायण ने मांस को 'पिशाचों का अन्न' कहा है, परन्तु उपर्युक्त मंत्र में बकरे के मांस को 'देवों का अन्न' बतलाया है। कैसी ये सर्वथैव परस्पर विरोधी बातें हैं। धर्म-शास्त्र में सर्वत्र मांस को 'पिशाचान्न' नाम से राक्षसों का अन्न ही कहा है, जैसे कि मनु में (११, ९५) लिखा है—

यक्षरक्षःपिशाचान्नं, मद्यं मांसं सुरासवम् ।
तद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं, देवानामश्नता हविः ॥

यहां 'देवानां हविः' से देवान्न को पिशाचान्न मांस से सर्वथैव पृथक् बतलाया है। अतः, उपर्युक्त मंत्र का सायणकृत अर्थ युक्तियुक्त नहीं। इस मंत्र का अर्थ आचार्य दयानन्दसरस्वती ने इसप्रकार किया है—

हे विद्वान् पुरुष ! जिस मनुष्य से (वाजिना अर्वन) वेगवान् घोड़े के साथ (एष: विश्वदेव्य:) यह सब दिव्यगुणों में श्रेष्ठ (पूष्ण: भाग: छाग:) पुष्टि का भाग बकरी का दूध (पुर: नीयते) पहले पहुँचाया जाता है, (यत्) और जो (त्वष्टा) सुन्दर रूप साधक मनुष्य (सौश्रवसाय) उत्तम अन्नों में प्रसिद्ध अन्न के लिए (अर्वता) विज्ञानपूर्वक (एनं अभिप्रियं सब प्रकार से प्रिय इस (पुरोडाशं इत्) सुसंस्कृत अन्नको ही (जिन्वति) प्राप्त करता है, वह सुखी होता है।

एवं, उपर्युक्त मंत्र का भाव स्वामी जी के शब्दों में ही यह है कि 'जो मनुष्य घोड़ों की पुष्टि के लिए छेरी का दूध उनको पिलाते और अच्छे बनाए हुए अन्न को खाते हैं, वे निरन्तर सुखी होते हैं।' 'छाग' से बकरी का दूध कैसे लिया जाता है, इसका उत्तर प्रमाणरूप में पूर्वोक्त 'छाग कषायमधुरं' आदि चरक-वचन है।

११—ऐसा प्रतीत देता है कि प्राचीन काल में छाग आदि पशु वनों में पाले जाते थे और तब पशुवध की प्रथा प्रचलित न थी। जैसे कि चरक १, ११८ में लिखा है—

औषधीर्नामरूपाभ्यां, जानन्ते ह्यजपा वने।
अविपाश्चैव गोपाश्च, ये चान्ये वनवासिन: ॥

यहां अजपा:, अविपा:, गोपा: आदि सब शब्द पशुरक्षा में प्रयुक्त हैं, जिनका अर्थ अजपालक, अविपालक और गोपालक हैं।

१२—ऋग्वेद के उसी सूक्त का (१, १६२, २१) दूसरा मंत्र और है—

'न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि ।
देवानिदेषि पथिभिः सुगेभिः ॥'

इसका अर्थ सायणाचार्य ने इस प्रकार किया है—"(न वा उ एतत् म्रियसे) हे यज्ञछाग ! तू निश्चय से नहीं मरता अर्थात् तू अब दूसरे साथी घोड़े की तरह मृत नहीं होता क्योंकि तू देवत्व को प्राप्त हो जाता है, जैसा कि अभी आगे कहा गया है। (न रिष्यसि) अतएव तू हिंसित नहीं होता क्योंकि व्यर्थ में हिंसा नहीं की गयी। वाह, छाग को मारने पर प्रत्यक्ष तौर पर तो उस के अंग-प्रत्यंगों का नाश दिखलाई पड़ता है, फिर यह कैसे कहा कि छाग मरता नही ? इस का उत्तर देते हैं—(सुगेभिः पथिभिः) देवयान रूपी जानेके सुन्दर मार्गोंसे हे छाग ! (देवान् इत् एषि) तू देवताओं को ही प्राप्त होता है, अतः तेरा वध नहीं होता परन्तु तुझे स्वर्ग की प्राप्ति होती है।"

भला, विवेक के बिना कोई प्राणी कैसे देवत्व या स्वर्गत्व को पा सकता है। पशु में तो स्वभावतः ही विवेक का अभाव है, अतः वध करने पर छाग की देवत्व-स्वर्गत्व-प्राप्ति सर्वथैव मिथ्या है। देखिए, ऋषिदयानन्द ने मंत्र का क्या अर्थ किया है—

योगाभ्यासादि शुभ कर्म करने वाले मनुष्य ! (एतत्) तू इस चेतनस्वरूप परमात्मा और आत्मा को पाकर (न वा उ म्रियसे) न कभी स्वयं मरता है (न रिष्यसि) और न कभी दूसरे को मारता-सताता है, (सुगेभिः पथिभिः) किन्तु तू सुखपूर्वक चलने योग्य जीवनमार्गों से (देवान् इत् एषि) विद्वान् देवजनों किंवा दिव्य पदार्थों को ही प्राप्त करता है।

१३—यज्ञ में पशुवध सर्वथैव निन्दनीय और त्याज्य है, यह निम्नलिखित अथर्ववेद के मंत्र (७, ५, २५) में स्पष्ट तौर पर आदिष्ट है—

मुग्धा देवा उत शुना यजन्तोत गोरङ्गैःपुरुधा यजन्त ।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्रण वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥

इस मंत्र का अर्थ सायणाचार्य ने ही इसप्रकार किया है—"(मुग्धाः) कार्याकार्य विवेक रहित मूढ़ (देवाः) यजमान लोग (उत शुना अयजन्त) अत्यन्त गर्हित पशु कुत्ते से यज्ञ करते हैं, (उत गोः अङ्गैः पुरुधा अयजन्त) और गौ के अंगों से बहुधा यज्ञ करते हैं। अभक्ष्यों में चरम सीमा कुत्ता और अवध्यों में चरम सीमा गौ है। परन्तु 'मुग्धा देवाः' आदि वेदाज्ञा के होते हुए भी जो याज्ञिक लोग यज्ञ में पशुवधरूपी इस निन्दनीय कर्म को करते हैं, यह आश्चर्य की बात है। ऐसा नहीं करना चाहिए। जो ऐसा करते हैं, वे निस्सन्देह मूढ़ हैं"

इस सायणकृत मंत्रार्थ से यज्ञ में पशुवध का निषेध ही है। यद्यपि सायणाचार्य ने दूसरी जगह यह लिख दिया कि यज्ञ में मारा हुआ पशु देवत्व को पाता है, परन्तु जब उक्त मंत्र में यज्ञ में पशुवध को निन्दनीय ही बतलाया है, तब उसका वह लेख परस्परविरोधी ही है। अतः वेदाज्ञा के अनुसार यह निषिद्ध कर्म कभी न करना चाहिए।

१४—सब कालों में मांसभक्षण व पशुवलि को त्याज्य बतलाने वाले निम्न दो वेदमंत्र और दिए जाते हैं—

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयञ्च ये क्रविः ।

गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥ (अथर्व०)

(ये केशवाः) जो पिशाच कामी लोग (आमं मांसं अदन्ति) कच्चा मांस खाते हैं, (ये च पौरुषेयं क्रविः) और जो पुरुषसंपादित अर्थात् पका हुआ माँस खाते हैं, (गर्भान् खादन्ति) और जो अण्डों को खाते हैं, (तान्) कच्चा-पक्का-अण्डा, इन तीनों प्रकार के माँस को खाने वाले कामियों को (इतः) यहां से (नाशयामसि) हम नष्ट करते हैं या दूर करते हैं। केशाः दुर्व्यसनानि सन्ति येषां ते केशवाः, 'केशाद्वोऽन्यतरस्यां' सूत्र से 'केश' से 'व' प्रत्यय। इस मंत्र का सायणाचार्य ने भी यही अर्थ किया है। दूसरा वेदमंत्र यजुर्वेद का (१९, ८१) है—

तदस्य रूपममृतं शचीभिस्तिस्रो दधुर्देवताः संरराणा।
लोमानि शष्पैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य मांसमभवन्न लाजाः॥

इसका अर्थ ऋषि दयानन्द ने इसप्रकार किया है-(संरराणाः) विद्या आदि का सम्यकृतया दान करने वाले [तिस्रः देवताः] अध्यापक-उपदेशक-परीक्षक, ये तीन प्रकार के विद्वान लोग, [शष्पैः लोमानि दधुः] और जो दीर्घजटाओं के सहित दाढ़ी-मूंछ के लोमों को धारण किए हुए हैं, ऐसे तपस्वी ब्रह्मचारी [शचीभिः] ज्ञान-कर्म पूर्वक [अस्य] इस यज्ञ के [बहुधा] बहुत प्रकार के [तत् अमृतं रूपं] उस सच्चे अमृतरूपी स्वरूप को जानते हैं, (तोक्मभिः न) बालबुद्धि अविद्वानों से उस का स्वरूप ज्ञेय व अनुष्ठेय नहीं। (अस्य) इस के मध्य में अर्थात् इस यज्ञ में [त्वक्] चमड़ा (मांसं) मांस, [लाजाः] और भुना हुआ घृतरहित सूखा अन्न [न अभवत्] हव्य नहीं होता।

यहाँ स्पष्ट तौर पर यज्ञमें मांस न डालने का विधान है।

भला, इससे और अधिक स्पष्ट वेदप्रमाण और क्या हो सकता है।

मांस-मीमांसा

गोमहिमा और छागमहिमा पर विचार करते हुए अनेकों पुष्ट प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका कि यज्ञों में पशुवध वेदनिन्दित और त्याज्य है। अब, 'माँस' पद की मीमांसा की जाती है कि वैदिक साहित्य में प्रयुक्त 'मांस' शब्द के क्या अर्थ हैं।

१—'मांसानि वा आहुतयः' (शत० ९, २)
'मांसीयन्ति ह वै जुह्वतो यजमानस्याग्नयः'
एतद् ह वै परममन्नाद्यं यन्मांसं, स परमस्यैवान्नाद्य-
स्यात्ता भवति' (शत० ११, ७)।

यहां एक जगह पर शतपथ ने कहा 'यज्ञाहुतियें मांस की होनी चाहियें' और दूसरी जगह लिखा 'हवन करते हुए यजमान की अग्नियें मांसाहुति की इच्छा रखती हैं, अर्थात् यज्ञ में मांसाहुति देनी चाहिए'। पर, मांस शब्द को देख कर पाठक कहीं भ्रम में न पड़जावें, अतः ब्राह्मणकार उसी स्थल पर आगे चलकर मांस का यज्ञप्रकरण में क्या अर्थ है इसे स्वयं स्पष्ट कर देते हैं कि यहां मांस का अर्थ 'परम अन्न' है। और, 'परमान्नं तु पायसम्' अमरकोश के इस वचन के अनुसार दूध से तैयार किये गये पायस को सत्त्वगुण-प्रधान किंवा सर्वोत्कृष्ट होने के कारण 'परमान्न' कहा है। अतः, शतपथ के अनुसार यज्ञों में सर्वत्र मांस का अर्थ पायस आदि है, लोकप्रसिद्ध मांस नहीं।

अतएव शतपथ ने यह भी आदिष्ट कर दिया कि मनुष्य को उसी परमान्न का भक्षण करना चाहिए, लोकप्रसिद्ध अभक्ष्य मांस का नहीं।

इतना ही नहीं कि शतपथ ने यज्ञप्रकरण में मांस का अर्थ 'परमान्न' माना है, परन्तु इसके साथ ही लोकप्रसिद्ध मांस को 'वृथामांस' पुकारते हुए उसे सर्वथा अभक्ष्य, अहव्य और त्याज्य भी बतलाया है। जैसे कि लिखा है—

'पचन्ति वा अन्येषु अग्निषु वृथामांसम्, अथैतेषां नातोऽन्या मांसाशा विद्यते यस्यो चैते भवन्ति' (श० ११, ७)

अर्थात्, पिशाच लोग गार्हपत्य-आहवनीय-दक्षिणा, इन तीनों याज्ञिक अग्नियों से भिन्न अन्य अग्नियों में 'वृथामांस' को पकाते हैं। क्योंकि जिस यजमान की ये अग्नियें होती है, उन अग्नियों का (अतः अन्या मांसाशा न विद्यते) इस 'परमान्न' के अतिरिक्त अन्य मांसभक्षण नहीं।

एवं, यहां स्पष्ट तौर पर दर्शाया गया है कि त्रिविध अग्नियों में कहीं भी अभक्ष्य मांस न पकाया जाता और न उसकी आहुति दी जाती है। मांसाशा मांसभक्षणम्।

२—'यदा पिष्टान्यथ लोमानि भवन्ति। यदाप आनयत्यथ त्वग् भवति। यदा संयौत्यथ मांसं भवति।' [श० पृ० १२]

अर्थात्, जब व्रीहियवादि पीसे जाते हैं तब वे 'लोम' होते हैं, जब उन लोमों में पानी डाला जाता है तब वह पीठी 'त्वक्' होती है, और जब उस पीठी को घी में तला या पकाया जाता है तब वह पूड़ा आदि 'मांस' होता है। एवं, यहां व्रीहियवादि की पीठी से बने हुए अपूपादिक को 'मांस' कहा गया है।

३—'यदिमा आप एतानि मांसानि' [श० ७, ४, २]।

जो ये जल हैं, ये मांस हैं। एवं, यहां पानी को माँस कहा है।

४—'मांसेभ्य एवास्य पलाशः समभवत् तस्मात् स बहुरसो लोहितरसो लोहितमिव हि मांसम्' (श० अ० १२)

'इस पलाश वृक्ष के (मांसेभ्यः) गूदों मे ही ढाक का गोंद पैदा होता है। इसलिए वह प्रचुर गोंद लाल रंग का होता है, क्योंकि ढाक के गूदे का रंग लाल होता है।' अर्थात्, ढांक में से गोंद बहुत अधिक मात्रा में निकलता है, वह लाल रंग का होता है, गूदे में से निकलता है, और गूदा भी लाल रंग का होता है। एवं, यहां मांस का अर्थ 'वृक्ष का गूदा' किया है।

५—'त्वक् तोक्मानि मांसम्' [श० अ० ८, ३]।

यहां 'तोक्म' को माँस कहा है। और कात्यायन सूत्र के सौत्रामणि प्रकरणस्थ १८ वें सूत्र के भाष्य में कर्काचार्य ने 'तोक्मशब्देन यवा विरूढ़ा उच्यन्ते' लिखते हुए हरे जौ को 'तोक्म' कहा है। अतः, मांस का शतपथोक्त ५ वां अर्थ हरे जौ है।

६—"अग्निर्वै देवानां हौत्रमुपैष्यञ्छरीरमधूनुत। तस्य यन्मांसं समासीत् तद् गुग्गुल्वभवद्, यत् स्नावं तत् सुगन्धि तेजनं, यदस्थि। तत् पीतदार्वैतानि वै देवसुरभीणि। देवसुरभिरेव तदभ्यञ्जते"। (ताण्ड्यमहाब्रा० २४, १३, ५)

ताण्ड्यमहाब्राह्मण ने इस स्थल पर यज्ञोपयोगी सुगन्धित द्रव्य 'गुग्गुल' को माँस के नाम से पुकारा है, जोकि गुग्गुल वृक्ष का एक तरह का गोंद होता है।

७—वैद्यक ग्रन्थों में कहीं २ 'जटामांसी' और 'मांसरोहिणी' ओषधियों को भी मांस कहा है।

एवं, हमने उपर्युक्त प्रमाणों से मांस के ८ अर्थ पायस, पीठी के बने पूड़े आदि, जल, वृक्ष का गूदा, हरे जौ, गुग्गुल, जटांमाँसी और मांसरोहिणी, दर्शा दिए। इसी प्रकार अन्य भी अनेक अर्थ वैदिक साहित्य में प्रयुक्त होते हैं। अतः, यज्ञ व भक्षण प्रकरण में यदि कहीं माँस शब्द का प्रयोग हो तो पाठकों को उसका अर्थ अभक्ष्य माँस, जिसे कि शतपथ ने 'वृथामांस' कहा है, उसे छोड़कर दूसरे ही प्रकरणानुसारी अर्थ का ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि 'वृथामांस' के प्रयोग का विधान कहीं नहीं मिलता, अतः वह सर्वथैव त्याज्य है।

पशुवध विषय में प्रश्नोत्तर

(पू०) वेद में हिंसात्मक यज्ञका विधान है।

(उ०) नहीं, वेद में हिंसात्मक यज्ञका विधान नहीं।

(पू०) वेदमंत्रों में हिंसा का उल्लेख है तो पाया जाता है।

(उ०) नहीं इस प्रतीति का कारण भ्रान्ति है।

(पू०) भ्रान्ति नहीं, योगरूढ़ि से अजा-छाग-अश्व-गौ आदि पद हिंसाप्रकरण में पशुवाचक आते हैं।

(उ०) नहीं, वेद में योगरूढ़ि का ग्रहण नहीं, प्रत्युत यौगिक शब्द ही माने गये हैं।

(पू०) सब शब्दों को यौगिक मानने पर सर्वत्र काम नहीं चल सकता।

(उ०) कैसे ? कोई उदाहरण प्रस्तुत कीजिए।

(पू०) 'छागस्य वपाया मेदसोऽनुब्रूहि' यह उदाहरण है।

(उ०) छाग, वपा, मेदस् -ये यौगिक ही हैं, जिनके क्रमशः अर्थ बकरी का दूध, गौ का दूध और घी है।

(पू०) क्या लोक में भी ऐसा व्यवहार है, या आपकी अपनी कल्पना है ?

(उ०) हां, 'छागं कषायमधुरं शीतं ग्राहि पयो लघु' देखो यहां आयुर्वेद में 'छाग' शब्द बकरी के दूध के लिए प्रयुक्त है।

(पू०) पशु शब्द का क्या अर्थ है ?

(उ०) अज्ञानी जीव। जैसे कि 'पशुना रुद्रं यजते' का व्याकरणोक्त अर्थ है 'पशुं रुद्राय ददाति'। अर्थात्, अज्ञानी बालक को ज्ञानप्राप्ति के लिए उपदेष्टा गुरु के समर्पित करता है।

(पू०) लोक में तो 'पशु' शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता।

(उ०) लोक में भी होता है। 'पशुपति' शब्द विद्वान् पुरुष के लिए प्रयुक्त है। इसीप्रकार यजुर्वेद में भी 'पशूनां पतये' विद्वान् के लिए आया है।

(पू०) 'पशुं रुद्राय ददाति' में पशु का अर्थ गवादि पशु करने में क्या दोष है ?

(उ०) वेद में पशुवध का निषेध होने से यहां पशु का अर्थ गाय आदि नहीं किया जा सकता। जैसे कि

'यजमानस्य पशून् पाहि' 'ओषधे त्रायस्व' 'स्वधिते मैनं हिंसीः' आदि अनेक स्थलों में पशुरक्षा का विधान है

(पू०) वेद में पशुवध का निषेध है, यह कहना ग़लत है, क्योंकि ब्राह्मणों में हिंसा का विधान पाया जाता है।

(उ०) ब्राह्मण तो वेद नहीं।

(पू०) मंत्र-ब्राह्मण विभाग से दोनों वेद हैं।

(उ०) नहीं, ऋगादि मंत्रसंहितायें ही वेद हैं, ब्राह्मण नहीं।

(पू०) 'मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' इस कात्यायन सूत्र के अनुसार मंत्र-ब्राह्मण, दोनों का वेद नाम है।

(उ०) कात्यायन का उपर्युक्त सूत्र परिभाषा सूत्र है, जिस का केवल इतना ही अभिप्राय है कि उस कात्यायन सूत्र में जहां २ वेद शब्द का प्रयोग होगा वहां २ सर्वत्र उसमें मंत्र और ब्राह्मण, दोनों का ग्रहण होगा। अतः, यह परिभाषा सार्वत्रिक नहीं केवल एक उसी कात्यायन ग्रन्थ से सम्बन्ध रखती है। जैसे कि अष्टाध्यायी में 'अदेङ् गुणः' परिभाषा सूत्र है। उसके आधार पर अष्टाध्यायी में पठित 'गुण' से अ-ए-ओ, इन तीन वर्णों का ग्रहण किया जाता है। अतः यदि इसे परिभाषा सूत्र न माना जावेगा तो कात्यायन का वचन ही असंगत होजायगा क्योंकि गोपथ ब्राह्मण ने स्पष्ट तौर पर अपने को वेदों से भिन्न दर्शाया है।

(पू०) ब्राह्मण वेदों के अंग हैं। अतः, अङ्गाङ्गिभाव न्याय से अंग ब्राह्मण अपने अंगी वेद से पृथक् नहीं।

(उ०) नहीं, ऐसा नहीं। ऐसा अंगाङ्गिभाव मानने से कल्पादि ग्रन्थ भी वेद बन जावेंगे।

(पू०) तो फिर क्या, कल्पादिकों को भी वेद मान लीजिए, इससे क्या हानि है।

(उ०) फिर तो अनन्तता का दोष उत्पन्न हो जावेगा। सभी ग्रन्थ वेद बन जावेंगे।

(पू०) बन जावें, इसमें क्या हानि है।

(उ०) प्रायश्चित्त विधान तथा पारायण की कभी पूर्ति हो न होगी। और, फिर ऐसा होने पर धर्म की व्यवस्था ही कोई न रहेगी और अनिष्ट ही अनिष्ट होगा। परन्तु ब्राह्मणों में तो स्पष्ट तौर पर मंत्रसंहिताओं को ही वेद कहा है।

(पू०) अच्छा, जब ब्राह्मण शाखाग्रन्थ हैं तो वे मूल 'वेद' से पृथक् नहीं हो सकते।

(उ०) ठीक है, शाखायें वही हैं जो मूल के अनुकुल हों। ऐसा कभी नहीं होता कि आम के मूल से नींव की शाखायें निकल आवें। अतः, जो शाखायें 'मूल' वेद के अनुकूल हैं वही प्रमाणिक होंगी, दूसरी नहीं।

(पू०) यजमान के द्वारा जब पशु को स्वर्ग की प्राप्ति होती है, तब भला उस पशु को स्वर्ग-प्राप्ति के लिए यज्ञ में मारने में क्या दोष है?

(उ०) तब तो यह बड़ा अच्छा उपाय है। यजमान अपने माता-पिता को यज्ञ में मार कर उन्हें स्वर्ग पहुंचा दिया करे।

(पू०) वेद में छाग आदि अप्रसिद्ध शब्दों से क्यों उपदेश दिया गया है, स्पष्ट शब्द ही प्रयुक्त करने थे ?

(उ०) इस का उत्तर तो यास्काचार्य के शब्दों में यह है कि 'नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति, पुरुषापराधः स भवति' यह खूंटे का अपराध नहीं कि उसे अन्धा नहीं देखता और अतएव उससे ठोकर खाकर गिर पड़ा, परन्तु यह उस अन्धे पुरुष का ही अपराध है। विद्वान और मूर्खों में यही तो भेद है कि विद्वानों के लिए जो विद्या प्रत्यक्षवत् स्पष्ट है, वह मूर्खों को परोक्षवत् जान पड़ती है।

[पू०] ब्राह्मणों में क्या कहीं मंत्रसंहिता के मंत्र प्रदर्शित किए गए हैं ?

[उ०] गोपथ ब्राह्मणके प्रारम्भ में ही ऋग्वेदादि चारों वेदों के प्रारम्भिक चार मंत्र प्रदर्शित हैं, परन्तु वहां ब्राह्मण का कोई वाक्य प्रदर्शित नहीं किया गया।

ब्राह्मण वेद नहीं

अभी प्रश्नोत्तर-प्रकरण में अति संक्षेप से बतला आए हैं कि ब्राह्मण वेद नहीं। अब, यहां उसी विषय के और अधिक प्रमाण देकर उसे परिपुष्ट किया जाता है।

१—'तदेतद् ऋचाभ्युक्तम्-एष नित्यो महिमा' [बृ० ६, ४, २३]

'न ऋषेर्वचः श्रुतं—द्व सृती अशृणवं' (बृहदा० ८, २, २)

ये शतपथ ब्राह्मण के अन्तिम प्रकरण बृहदारण्यकोपनिषद् के वचन हैं। यहां ब्राह्मण ने प्रमाण के तौर पर 'एष नित्यो महिमा' 'द्वे सृती अशृणवं'--ये वेदमंत्र निर्दिष्ट किए हैं। यदि ब्राह्मण और वेद एक ही होते तो यह न कहा जाता कि वेद [ऋचा] ने ऐसा कहा है, क्या वेद [ऋषि] का वचन नहीं सुना ? अतः, स्पष्ट है कि ब्राह्मण के मत में वेद ब्राह्मण से भिन्न हैं।

२—इसीप्रकार शतपथ के द्वितीयकाण्डस्थ अग्निष्टोम याग प्रकरण में सैंकड़ों मंत्र विनियोग रूप में उल्लिखित हैं, जिससे स्पष्ट विदित होता है कि ऋषियों ने कर्मकाण्ड के प्रतिपादन के लिए ब्राह्मण ग्रन्थ रचे हैं। अत एव (ब्रह्मणः इदं ब्राह्मणम्) ब्रह्म अर्थात् वेद के व्याख्यान भूत होने से इनका नाम 'ब्राह्मण' रखा गया है। अतः, स्पष्ट है कि ब्रह्म (वेद) और ब्राह्मण (वेदव्याख्यान) किसी भी हालत में एक अर्थात् वेद (ब्रह्म) नहीं हो सकते।

३—इसी प्रकार कात्यायन भी प्रमाण को अकाट्य रूप में प्रस्तुत करने के लिए वेद की ही शरण लेता है, ब्राह्मण की नहीं। जैसे कि 'छागो वा मंत्रवर्णात्' में मंत्र (वेद) की शरण ली है। अतः, वेद और ब्राह्मण एक नहीं।

४—एवं, पाणिनि मुनि भी वेद और ब्राह्मण को पृथक् २ मानते थे एक नहीं। अतएव उन्होंने 'द्वितीया ब्राह्मणे' 'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु' 'जनिता मंत्रे' 'बहुलं छन्दसि' आदि अनेकों सूत्रों में ब्राह्मण और वेद (मन्त्र, छन्दस्)

को पृथक् २ दर्शाया है और उन सूत्रों के उदाहरण भी व्याख्याकारों ने वेद तथा ब्राह्मण के भिन्न २ ही दिए है।

यदि वेद और ब्राह्मण एक ही होते तो साहित्य में प्रयुक्त शब्दों को व्याकरण द्वारा नियमबद्ध करने वाले पाणिनिमुनि 'चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि' ((२, ३, ६२) इस सूत्र में ' छन्दसि ' न पढ़ते, क्योंकि इससे पहले सूत्र 'द्वितीया ब्राह्मणे' (२,३,६०) से 'ब्राह्मणे' की अनुवृत्ति आ ही जाती, जैसे कि 'पूष्यब्रुवोः' आदि ६१ में सूत्र में ब्राह्मणे' का अनुवर्तन हुआ है।

इसी प्रकार पाणिनिमत का तीसरा पुष्ट प्रमाण यह है कि उन्हों ने ' छन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि' (४, २, ६६) इस एक ही सूत्र में छन्दस और ब्राह्मण दोनों इकट्ठे पढ़े हैं, जिसका एकमात्र यही कारण है कि वेद और ब्राह्मण भिन्न २ हैं, एक नहीं। यदि एक ही होते तो अकेला 'छन्दः' पढ़ना चाहिए था 'ब्राह्मणानि' नहीं।

प्रश्नोत्तर में आए वेदब्राह्मणैकत्व संबन्धी प्रसंग से उत्तररूप में हमने कुछ विस्तार से लिख दिया। अब हम पुनः उसी पशु-वध निषेध संबन्धी प्रकृत विषय की ओर आते हैं।

अथर्ववेद ११, ७, ७ में लिखा है—

राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः॥

राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, अर्कमेध, अश्वमेध आदि सब अध्वर अर्थात् हिंसारहित यज्ञ है, जोकि प्राणिमात्र की वृद्धि करनेवाला और सुख-शान्ति देने वाला है। एवं, इस मंत्र में राजसूय आदि सभी यज्ञों को 'अध्वर' कहा है जिसका एकमात्र

सर्वसम्मत अर्थ 'हिंसा रहित यज्ञ' है, जाकि निषेधार्थक नञ् पूर्वक 'ध्वर' हिंसायां धातु से बनता है। ध्वरो हिंसा तद्भावोऽत्र सोऽध्वर:। अत:, स्पष्ट है कि वेदने किसी भी यज्ञ में पशुवध की आज्ञा नहीं दी, उलटा पशुवध करने पर उसे यज्ञ ही नहीं माना। इसलिए वेद के नाम पर यज्ञों में पशुवध करना अपने को धोखा देना, दूसरों को उलटा रास्ता बतलाना, अथवा अपनी अज्ञानता प्रकट करना है। फिर, यह भी देखिए कि पशु-वध करने पर प्राणिमात्र की क्या वृद्धि हुई और उसे क्या सुख शान्ति मिली, उलटा प्राणी की हत्या करते समय उसे घोर यातना दी जाती है और उसका जीवन तक समाप्त कर दिया जाता है, तब वह कर्म 'जीवबर्हिमदिन्तम:' कैसे रहा।

जो मूढ़ याज्ञिक लोग 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' का ढोल पीटते हुए यज्ञ में पशुवध को अहिंसा बतलाते हैं, पता लगता है उनकी बुद्धि कहीं चरने चली गयी है, अन्यथा वे ऐसा कभी न कहते। देखिए मनु ने (५, ४४-४५) 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' का क्या तात्पर्य दिया है—

या वेदविहिता हिंसा, नियताऽस्मिंश्चराचरे।
अहिंसामेव तां विद्याद्, वेदाद् धर्मो हि निर्बभौ॥
योऽहिंसकानि भूतानि, हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवँश्च मृतश्चैव, न क्वचित् सुखमेधते॥

अर्थात, इस विश्व ससार में दुष्टों-अत्याचारियों-क्रूरों पापियों को जो दण्ड-दान रूपी हिंसा वेदविहित होने से नियत है, उसे अहिंसा ही समझना चाहिए, क्योंकि वेद से ही यथार्थ धर्म का प्रकाश होता है। परन्तु इसके विपरीत जो निहत्थे,

निरपराधी अहिंसक प्राणियों को अपने सुख की इच्छा से मारता है, वह जीता हुआ और मरा हुआ, दोनों अवस्थाओं में कहीं भी सुख को नहीं पाता।

दुष्टों को दण्ड देना हिंसा नहीं प्रत्युत अहिंसा होने से पुण्य है, अतएव मनु ने (८-३५१) लिखा है—

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥

अर्थात्, चाहे गुरु हो. चाहे पुत्र आदि बालक हो, चाहे पिता आदि वृद्ध हो, और चाहे बड़ा भारी शास्त्री ब्राह्मण भी क्यों न हो, परन्तु यदि वह आततायी हो और घात-पात के लिए आता हो, तो उसे बिना विचारे तत्क्षण मार डालना चाहिए। क्योंकि प्रत्यक्षरूप में सामने होकर व अप्रत्यक्षरूप में लुक-छिप कर आततायी को मारने में मारने वाले का कोई दोष नहीं होता क्योंकि क्रोध को क्रोध से मारना मानो क्रोध की क्रोध से लड़ाई है।

इसीप्रकार वेद ने स्थान २ दुष्टदमन की आज्ञा देते हुए उन्हें दण्ड देने का प्रतिपादन किया है। जैसे—

'शासदव्रतान्' (ऋ० १, ५१, ८)

जो पापी लोग यम-नियम आदि व्रतों का पालन नहीं करते, प्रत्युत व्यभिचार, झूठ, चोरी, घात-पात आदि कुकर्मों में रत हैं, उन्हें दण्ड दिया जाता है।

'यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्' (ऋ० १, ५१, ८)

सदाचारहीन दुष्ट लोगों को यथायोग्य दण्ड देते हुए उन्हें सुख से घोर दुःख की निचली कोटि में गिरा दिया जाता है।

'नेह भद्रं रक्षस्विने' (ऋ० ६, ४, १२)

इस संसार में राक्षसवृत्ति वाले पापी का कभी भला या कल्याण नहीं होता।

'मा मर्त्यस्य मायिनः' (ऋ० १, ३, २)

छली-कपटी-दम्भी-मायावी राजा की सेना कभी बलवती व प्रशस्त नहीं होती।

एवं, यह दुष्टदलन वेदादिष्ट होने से हिंसा नहीं और अतएव अधर्म भी नहीं। इसलिए ऐसी अहिंसा रूपी हिंसा तो कर्तव्य है, परन्तु वेदाविहित हिंसा करना महापाप है, अधर्म है। उसे कभी भी, किसी भी हालत में, यहाँ तक कि आपत्काल में भी न करना चाहिए। देखिए इसके लिए मनु (५, ४४) क्या लिखता है—

'नाऽवेदविहितां हिंसामापद्यपि समाचरेत्'

अर्थात् मनुष्य वेद से अविहित हिंसा को आपत्ति में भी कभी न करे। ऐसा करने पर क्या होगा, सुनिए वेद (ऋ० १०, ६३, १३) क्या कहता है—

'अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते'

वह अहिंसक मनुष्य संसार में खूब बढ़ता है, खूब उन्नति करता है। अतः, पशुवध पाप है, अवनति-कारक है, दण्ड योग्य

है, इसलिए ऐसा कुकर्म कभी न करना चाहिए। यज्ञादि शुभ कर्मों में मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों का प्रचार धूर्त लोगों ने किया है। जैसे कि लिखा है—

'सुरामत्स्यमधुमांसमासवं कृशरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतद्, नैतद्वेदेषु कल्पितम्'

शराब, मच्छी, अंगूरी आदि मीठी शराब, मांस, गन्ने के रस की बनी शराब, और मांसौदन, यह सब पाखण्ड धूर्तों ने चलाया है, वेद में इसकी कल्पना भी नहीं।

इसलिए वेदाभिमानी मनुष्यों को चाहिए कि वे यज्ञ में पशुवध को छोड़कर वेदानुकूल पूर्वोक्त चारों प्रकार की पवित्र हवि से हवन किया करें।

इत्योम् शम्।

मुद्रक—भास्कर-मुद्रणालयाध्यक्ष
चन्द्रमणि विद्यालंकार, पालीरत्न, देहरादून।